एच. एस. बी.

पेटेंट अपील पत्र

नरूला और न्यायमूर्ति हरबंस लाल के समक्ष

दया नंद, *वादी-अपीलकर्ता, बनाम*
हरियाणा राज्य, *प्रतिवादी-प्रतिवादी।*

1973 के लेटर्स पेटेंट अपील नंबर 747

9 दिसंबर, 1975।

दंड प्रक्रिया संहिता (1898 का वी) - धारा 88 और 89 - सिविल प्रक्रिया संहिता (*1908* का *वी) - धारा 9* - धारा *88* के तहत संलग्न भगोड़े *की संपत्ति* - सरकार का इसे अपने कब्जे में लेना लेकिन न तो इसे जब्त करना और न ही उसका निपटान करना - ऐसे भगोड़े की मृत्यु - ऐसी संपत्ति के कब्जे के लिए मृतक के उत्तराधिकारी द्वारा मुकदमा - क्या प्रतिबंधित *है।*

यह अभिनिर्धारित गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता 1898 में कोई भी प्रावधान उस संपत्ति की बहाली के लिए मृत भगोड़े के उत्तराधिकारी के दावे पर मुकदमा चलाने और निर्णय लेने वाले सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को नहीं रोकता है, जिसमें मूल रूप से भगोड़े में निहित शीर्षक और मुकदमे के समय उसके उत्तराधिकारी में निहित है और यदि संपत्ति अभी भी संहिता की धारा 88 की उप-धारा (7) के तहत सरकार के पास है। संपत्ति की जब्ती आदि की प्रकृति में किसी और आदेश के बिना पारित किया गया है जब तक कि इस बीच सरकार द्वारा संपत्ति को किसी तीसरे व्यक्ति को नहीं बेचा गया हो। धारा 89 के तहत भगोड़े के अधिकारों और भगोड़े के उत्तराधिकारी के अधिकारों में अंतर है। भगोड़ा धारा 89 के तहत दो साल के भीतर संपत्ति को बहाल कर सकता है यदि वह आपराधिक न्यायालय की संतुष्टि के लिए यह साबित करने में सक्षम है कि वह वारंट के निष्पादन से बचने के उद्देश्य से फरार नहीं हुआ या खुद को छिपाया नहीं और उसके पास उद्घोषणा की ऐसी सूचना नहीं थी जिससे वह उसमें निर्दिष्ट समय के भीतर उपस्थित हो सके। यदि वह धारा 89 के उपर्युक्त अवयवों को साबित करने में सक्षम नहीं है, तो वह दो साल के भीतर भी संपत्ति की बहाली का दावा नहीं कर सकता है। भगोड़े की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी के उस संपत्ति को वापस पाने के अधिकार के साथ ऐसी कोई बेड़ी नहीं जुड़ी है जो अभी भी संहिता की धारा 88 (7) के तहत सरकार के निपटान में है। ऐसे वारिस को धारा 89 के तहत आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है। धारा 89 की निहित सीमा केवल ऐसे व्यक्ति के लिए है जो उस प्रावधान के तहत आवेदन कर सकता था। सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 9 में प्रावधान है कि सिविल कोर्ट के पास उन सभी मामलों की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है जो किसी अन्य कानून द्वारा स्पष्ट रूप से या निहित रूप से प्रतिबंधित नहीं हैं। इस प्रकार इस तरह के मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सिविल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र संहिता की धारा 89 या कानून के किसी अन्य प्रावधान द्वारा प्रतिबंधित नहीं है।

(पैरा 11, 14 और 15)

माननीय न्यायमूर्ति आर एन मित्तल के दिनांक 28 मई, 1973 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट के खण्ड X के अंतर्गत लेटर्स पेटेंट *अपील, नियमित द्वितीय अपील में पारित की* गई है।(ग) वरिष्ठ उप-न्यायाधीश, गुड़गांव की अदालत के दिनांक 28 नवम्बर, 1962 के दिनांक 28 नवम्बर, *1962 के आदेश (* बढ़ी हुई अपीलीय शक्तियों के साथ) की अपील को स्वीकार करते हुए 1963 की रिट याचिका सं 499 *में*

24 अप्रैल, *1962 के उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, गुड़गांव के आदेश को निरस्त कर दिया* गया था। *और लागत के बारे में बिना किसी आदेश के वादी-प्रतिवादी के मुकदमे को खारिज करना।*

उपस्थित

पी. एस. जैन। अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता एस. पी. जैन, वी. एम. जैन और सी. बी. गोयल के साथ वकील

प्रतिवादी की ओर से हरियाणा के डिप्टी एडवोकेट जनरल एच. एन. मेहतानी *ने यह बात कही।*

माननीय मुख्य न्यायाधीश आर. एस. नरूला,

निर्णय

(1) लेटर्स पेटेंट के खंड 10 के तहत इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ यह अपील निचली अपीलीय अदालत के फैसले को उलट देती है, और इसके परिणामस्वरूप वादी-अपीलकर्ता के मुकदमे को खारिज कर देती है, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 और 89 में निहित कुछ प्रावधानों की व्याख्या और दायरे का सवाल उठाती है। 1898 (इसके बाद कोड कहा जाता है)। मामले के तथ्य जो विवाद में नहीं हैं, उन्हें पहले देखा जा सकता है।

(2) गुड़गांव जिले की तहसील नूंह के ताओरू गांव में स्थित दो बीघा और 13 बिस्वास कृषि भूमि में अधिभोग किरायेदारी का अधिकार लक्ष्मी नारायण मृतक और दया नंद वादी-अपीलकर्ता जो लक्ष्मी नारायण का भतीजा है, के बराबर हिस्से में था। उपरोक्त लक्ष्मी नारायण हत्या के एक मामले में वांछित थी, उसे पकड़ा नहीं गया था, वह फरार हो गया था और परिणामस्वरूप उसे संहिता की धारा 87 के तहत भगोड़ा घोषित किया गया था। उद्घोषणा के बावजूद लक्ष्मी नारायण ने हिरासत में आत्मसमर्पण नहीं किया था, इसलिए अधिभोग किरायेदारी अधिकारों में उनका आधा हिस्सा 9 जून, 1924 को संहिता की धारा 88 के तहत संलग्न किया गया था, और बाद में धारा 88 की उप-धारा (4) के तहत तत्कालीन पंजाब सरकार की ओर से कलेक्टर, गुड़गांव द्वारा भूमि में आधे हिस्से का कब्जा ले लिया गया था। कुर्क संपत्ति के संबंध में धारा 88 की उप-धारा (6 ए) के तहत किसी के द्वारा कोई दावा नहीं किया गया था, और यह दोनों पक्षों का सामान्य मामला है कि लक्ष्मी नारायण के जीवनकाल के दौरान लक्ष्मी नारायण के अलावा किसी और की उक्त संपत्ति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। लक्ष्मी नारायण बाद में थे; 30 दिसंबर, 1944 को पकड़ा गया, मुकदमा चलाया गया और दोषी ठहराया गया। मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के निर्णय की एक प्रति प्रदर्शनी पृष्ठ 3 है। उच्च न्यायालय में उनकी अपील को स्वीकार कर लिया गया और उन्हें बरी कर दिया गया और हिरासत से रिहा कर दिया गया। न तो दोषी ठहराए जाने से पहले और न ही बरी होने के बाद लक्ष्मी नारायण ने कुर्क की गई संपत्ति की बहाली के लिए कोई आवेदन किया। चूंकि लक्ष्मी नारायण अपने खिलाफ जारी उद्घोषणा में निर्दिष्ट समय के भीतर उपस्थित नहीं हुई थीं, इसलिए जिस संपत्ति पर कलेक्टर द्वारा कब्जा लिया गया था, वह धारा 88 की उपधारा (7) के तहत राज्य सरकार के निपटान में बनी रही। हालांकि, राज्य ने संपत्ति का निपटान नहीं किया। इस बीच, भूमि में लक्ष्मी नारायण के अधिभोग अधिकार पंजाब अधिभोग किरायेदार (मालिकाना अधिकारों का निहित) अधिनियम, 1953 की धारा 3 के संचालन द्वारा स्वामित्व के अधिकारों में बदल गए।

लगभग उसी समय लक्ष्मी नारायण की मृत्यु हो गई, उनके पीछे उनके भतीजे दया नंद वादी-अपीलकर्ता एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में छोड़ गए। यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि लक्ष्मी नारायण ने अपने पीछे कोई दूसरा वारिस नहीं छोड़ा है। चूंकि लक्ष्मी नारायण की मृत्यु की सही तारीख उपलब्ध नहीं है और एकमात्र निष्कर्ष यह है कि उनकी मृत्यु 1952 या 1953 में हुई थी, इसलिए उनकी भूमि में अधिभोग अधिकार या तो उनके अपने हाथों में या वादी के हाथों में उनके बाद स्वामित्व में बदल गया। यह उपर्युक्त परिस्थितियों में था कि 30 मई, 1961 को हमारे सामने अपीलकर्ता ने पंजाब राज्य (अब हरियाणा राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व) के खिलाफ विवाद में भूमि के कब्जे के लिए मुकदमा दायर किया। मुकदमे को राज्य द्वारा चुनौती दी गई थी और प्रतियोगिता के कारण ट्रायल कोर्ट द्वारा निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए थे: -

(१) क्या वादी वाद भूमि के हिस्से का स्वामी है क्योंकि वह अपने अधिकार का है?
(२) क्या वादी लक्ष्मी नारायण के उत्तराधिकारी के रूप में दूसरे आधे का मालिक है, और क्या वह लक्ष्मी नारायण मर चुका है?
(३) क्या प्रतिवादी ने अपनी कथित मृत्यु से पहले लक्ष्मी नारायण का हिस्सा जब्त कर लिया था? यदि हां, तो किस प्रभाव तक?
(४) क्या वाद वर्तमान स्वरूप में सुनवाई योग्य है? क्या सूट समय के भीतर है?
(५) राहत

(3) 24 अप्रैल, 1962 के अपने फैसले में, गुड़गांव के अधीनस्थ न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, श्री देव राज खन्ना की अदालत ने मुद्दा संख्या 1, 2 और 5 (ऊपर उद्धृत) पर कहा कि वादी उस भूमि में आधे हिस्से का मालिक था जो मूल रूप से उसके अधिभोग किरायेदारी में था, कि वादी लक्ष्मी नारायण का उत्तराधिकारी था। लेकिन वह विवादित भूमि का मालिक नहीं बन गया क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के तहत ऐसे उत्तराधिकारी के रूप में भूमि को बहाल करने के वादी के अधिकार को देवा सिंह और अन्य मामले में लाहौर उच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में रोक दिया गया था । *फजल डैड और अन्य* (1). मुद्दा संख्या 4 वादी के पक्ष में तय किया गया था और यह माना गया था कि मुकदमा सुनवाई योग्य था। मुद्दा संख्या 3 पर कोई अलग स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था, हालांकि यह पाया गया था कि राज्य ने लक्ष्मी नारायण की मृत्यु से पहले भूमि को कुर्क कर लिया था। भूमि की कुर्की और गैर-बहाली का प्रभाव यह था कि यह राज्य सरकार के निपटान में रहा, जिसकी व्याख्या विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा की गई थी, जिसका अर्थ यह था कि भूमि सरकार के कब्जे में रह सकती है जो इसे अपने द्वारा चुने गए तरीके से निपटने के लिए स्वतंत्र थी।

(4) मुकदमे को खारिज करने के खिलाफ वादी की पहली अपील में गुड़गांव के वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश श्री हर नारायण सिंह गिल ने 28 नवंबर, 1962 के फैसले में कहा कि कुर्क की गई संपत्ति को सरकार द्वारा कभी जब्त नहीं किया गया था, कि उस संपत्ति के लिए सरकार की स्थिति एक रिसीवर के समान थी जो वादी को संपत्ति बहाल करने के लिए बाध्य है। जो मृतक का सगा भतीजा होने के नाते, उसका निकटतम उत्तराधिकारी था। उन्होंने आगे कहा कि संहिता की धारा 89 मालिकाना हक वाले मुकदमे पर कोई रोक नहीं है और सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से या निहित रूप से प्रतिबंधित नहीं किया गया है। यह देखा गया कि वादी के खिलाफ कार्रवाई का कारण तब उत्पन्न हुआ जब मृतक अधिनियम की धारा 3 के संचालन द्वारा विवाद में

भूमि का मालिक बन गया था क्योंकि इससे पहले वादी विवाद में संपत्ति का दावा नहीं कर सकता था। विद्वान वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश ने सरकार की इस दलील को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि वादी के लिए एकमात्र उपाय संपत्ति की बहाली के लिए राज्य का रुख करना था और कब्जे के लिए मुकदमा सिविल कोर्ट में सुनवाई योग्य नहीं था। उस दलील को अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि प्रतिवादी ने अपने लिखित बयान में इसे नहीं उठाया था। प्रथम अपीलीय अदालत ने उस याचिका पर दर्ज सबूतों पर गौर करने से इनकार कर दिया क्योंकि इसे पक्षकारों की दलीलों में नहीं उठाया गया था। उपर्युक्त निष्कर्षों के परिणामस्वरूप वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश ने वादी की अपील को स्वीकार कर लिया, ट्रायल कोर्ट की डिक्री को रद्द कर दिया और पूरी भूमि के दो बीघा और 13 बिस्वास में से मृतक के आधे हिस्से के कब्जे के लिए डिक्री पारित की।

(5) 1963 की नियमित दूसरी अपील संख्या 499, जिसे निचली अपीलीय अदालत की डिक्री के खिलाफ पंजाब राज्य द्वारा पसंद किया गया था, को आर एन मित्तल जे के फैसले द्वारा अनुमति दी गई थी, निचली अपीलीय अदालत की डिक्री को उलट दिया गया था, और वादी-अपीलकर्ता के मुकदमे को बिना किसी आदेश के खारिज करने का आदेश दिया गया था। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र का सवाल, हालांकि सरकार के लिखित बयान में नहीं उठाया गया है, पहली बार दूसरे अपीलीय चरण में भी उठाने की अनुमति दी जा सकती है क्योंकि यह अदालत में अधिकार क्षेत्र की अंतर्निहित कमी से संबंधित है। यह देखा गया कि उस प्रश्न को निर्धारित करने के लिए किसी और सबूत की आवश्यकता नहीं थी। उस याचिका के गुण-दोष के आधार पर यह माना गया था कि धारा 88 की उप-धारा (7) के तहत राज्य सरकार में निहित संपत्ति की बहाली के लिए संहिता की धारा 89 के तहत दावा नहीं करने वाले मृतक (घोषित अपराधी) के न तो उसके स्वयं के दावे और न ही उसके उत्तराधिकारी के दावे पर धारा 89 में उल्लिखित दो साल की अवधि की समाप्ति के बाद सिविल कोर्ट द्वारा विचार किया जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत धारा 89 के तहत पारित आदेश को एक अलग वाद द्वारा चुनौती दी जा सकती है और विधायिका की नीति को ध्यान में रखते हुए कि जहां भी यह इरादा है कि आपराधिक न्यायालय द्वारा तय किया गया मामला सिविल कोर्ट के निर्णय के अधीन है, संहिता में विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि धारा 89 के तहत आपराधिक न्यायालय का निर्णय धारा 405 के तहत लागू होता है और धारा 88 की उप-धारा (6 ए) के विपरीत, जो आपराधिक न्यायालय के फैसले के बाद सिविल कोर्ट में कार्यवाही का सहारा लेने का प्रावधान करता है, घोषित अपराधी (या उसके उत्तराधिकारी) को बहाली के लिए सिविल कोर्ट का दरवाजा खटखटाने में सक्षम बनाने के लिए कोई प्रावधान नहीं किया गया है। संपत्ति का। अंत में यह माना गया कि धारा 88 के तहत जिस व्यक्ति की संपत्ति कुर्क की गई है, उसका उपाय केवल संहिता की धारा 89 के तहत दावा दायर करने में निहित है, न कि "कुर्की के खिलाफ" मुकदमा शुरू करने में। *देवा सिंह* और एक अन्य (सुप्रा) के मामले में लाहौर उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के फैसले के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह माना गया है कि एक घोषित अपराधी जिसकी अचल संपत्ति को संहिता की धारा 87 और 88 के तहत कार्यवाही में आपराधिक न्यायालय द्वारा कुर्क और बेचा गया है, उसे साधारण नागरिक कार्रवाई बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है। एक ऐसे मामले के बीच का अंतर जहां संपत्ति को उसके निपटान में होने के बाद सरकार द्वारा बेच दिया गया है और वर्तमान जैसे मामले जहां संपत्ति अभी भी सरकार के निपटान में है और उसका निपटान नहीं किया गया है)। देवा *सिंह और एक अन्य के मामले* में निष्कर्षों के संदर्भ में विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि इस तरह की बिक्री को रद्द करने के उद्देश्य से एक सिविल मुकदमा संहिता के प्रावधानों द्वारा निहित रूप से प्रतिबंधित है। *दत्ताजी नाना पाटिल*

बनाम *बॉम्बे हाईकोर्ट का फैसलानारायणराव भीमराव पाटिल* और अन्य, (2) जिनका लाहौर उच्च न्यायालय ने *देवा सिंघ और एक अन्य के मामले* में पालन नहीं किया था, को विद्वान न्यायाधीश का समर्थन नहीं मिला। धारा 88 की उप-धारा (7) में प्रयुक्त "वाद के निपटान में" शब्द का अर्थ यह निकाला गया था कि कुर्क की गई संपत्ति राज्य सरकार के नियंत्रण में रहती है और कुर्की की निरंतरता के दौरान किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी तरह से इसमें कोई अधिकार हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। इस तर्क के आधार पर विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि अधिभोग अधिकार जो कुर्की से मुक्त नहीं किए गए थे, वे अभी भी अस्तित्व में हैं और स्वामित्व में परिपक्व नहीं हुए हैं, क्योंकि सरकार विवाद में अधिभोग अधिकारों के कब्जे में थी और अभी भी है। अधिनियम की धारा 3 के खंड (क) में अधिभोग अधिकारों पर सृजित कुर्की के भार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। नतीजतन, विद्वान न्यायाधीश ने निम्नानुसार कहा: –

> "इसलिए, अधिभोग अधिकार राज्य सरकार के निपटान में रहेंगे और सिविल कोर्ट के पास उन अधिकारों पर निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। भूमि में अधिभोग अधिकारों के अलावा अन्य अधिकार, अर्थात्, मकान मालिक के अधिकार, हालांकि, वादी-प्रतिवादी में निहित हैं।

उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर ही राज्य की अपील को स्वीकार कर लिया गया था और वादी-अपीलकर्ता के मुकदमे को विद्वान न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसी से संतुष्ट नहीं होने पर, असफल वादी ने इस अपील को प्राथमिकता दी है।

(6) पक्षकारों के वकीलों को विस्तार से सुनने के बाद, हमें लगता है कि नियमित द्वितीय अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। *देवा सिंह और एक अन्य* के मामले में लाहौर उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून हमारे समक्ष इस मामले पर लागू नहीं होता है। भगोड़े ने उस मामले में संपत्ति की बहाली के लिए संहिता की धारा 89 के तहत आवेदन किया था। इससे पहले सरकार द्वारा इस संपत्ति को पहले ही बेच दिया गया था। जबकि उनके आवेदन को मजिस्ट्रेट द्वारा खारिज कर दिया गया था, सत्र न्यायाधीश द्वारा अपील पर इसे अनुमति दी गई थी। उस आदेश की समीक्षा के लिए दायर याचिका में लाहौर उच्च न्यायालय ने सत्र न्यायाधीश के आदेश में संशोधन किया और भगोड़े को संपत्ति की बिक्री से प्राप्त राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। इसके बाद भगोड़े ने इस आशय की घोषणा के लिए मुकदमा दायर किया कि नीलामी द्वारा कुर्क की गई भूमि की बिक्री अमान्य और शून्य थी और इससे भगोड़े के अधिकारों पर कोई असर नहीं पड़ेगा। यह उस तरह का मुकदमा था जिस पर रोक लगाई गई थी। उस मामले और हमारे बीच दो मुख्य अंतर स्पष्ट हैं। सबसे पहले, भगोड़े ने धारा 89 के तहत कार्यवाही का सहारा लिया था, जिसकी परिणति उच्च न्यायालय के अंतिम आदेश में हुई थी। दूसरे, जब मुकदमा दायर किया गया था तब विवादित संपत्ति सरकार के निपटान में नहीं थी, बल्कि पहले ही सरकार के हाथों से किसी तीसरे व्यक्ति को दे दी गई थी। संपत्ति की बहाली के लिए अपराधी का दावा करने वाला दावा विफल होने के बाद, बिक्री के अवैध या शून्य होने के बारे में घोषणा के लिए एक सिविल मुकदमे में उसके दावे को सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से बाहर माना गया था।

(7) *दत्ताजी नाना पाटिल के मामले* (सुप्रा) में घोषित अपराधी द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर संहिता की धारा 89 के तहत राशन के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया था और इस बीच राज्य को कुर्क की गई संपत्ति को जब्त करने का आदेश पारित किया गया था। यह माना गया था कि जब्ती

के आदेश का प्रभाव किसी भी शीर्षक को समाप्त करना था जो घोषित अपराधी के पास कुर्क संपत्ति के संबंध में हो सकता है और जब तक कि अपराधी ने कुर्की के बाद किसी तरह से शीर्षक हासिल नहीं किया था, तब तक यह देखना मुश्किल था कि उसके मुकदमे को कैसे बनाए रखा जा सकता है। मामले के तथ्यों पर यह माना गया था कि बॉम्बे कोर्ट के समक्ष मुकदमे में वादी ने संपत्ति की जब्ती के बाद से कोई शीर्षक हासिल नहीं किया था, और इसलिए, वह कब्जे के लिए मुकदमा बनाए नहीं रख सकता था। इस प्रकार लाहौर मामले और बॉम्बे मामले के बीच एकमात्र भौतिक अंतर यह है कि जहां लाहौर मामले में संपत्ति का मालिकाना हक बिक्री द्वारा किसी तीसरे व्यक्ति को दे दिया गया था, वहीं बॉम्बे मामले में संपत्ति का मालिकाना हक जब्त करने के स्पष्ट आदेश द्वारा सरकार को ही दे दिया गया था। और मुकदमे में वादी द्वारा दावा किया गया शीर्षक पूर्व-जब्ती समय का था।

(8) वादी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री पीतम सिंह जैन ने काउंसिल वी में भारत के राज्य सचिव मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले की ओर हमारा ध्यान आकर्षित *किया* है। *रंगास्वामी अयंगर और अन्य,* (3). उस मामले में यह माना गया था कि धारा 88 के खंड (7) को उस धारा के खंड (3) और खंड (4) के साथ पढ़ने से पता चलता है कि संपत्ति के निपटान से सरकार को प्राप्त अधिकार केवल कुर्की की निरंतरता के दौरान सरकार को उससे होने वाली आय का आनंद प्राप्त करने के लिए है क्योंकि धारा 88 या 89 में संपत्ति और भगोड़े के हिस्से को निहित करने वाले कोई शब्द नहीं हैं। सरकार में। चूंकि उस मामले में सरकार द्वारा आगे कोई कार्रवाई नहीं की गई थी (न तो संपत्ति को स्पष्ट रूप से जब्त करने का आदेश दिया गया था और न ही किसी तीसरे व्यक्ति को बेचा गया था), यह माना गया था कि स्पष्ट इरादा सरकार को संपत्ति पर तब तक रोक देना था जब तक कि भगोड़ा खुद को आत्मसमर्पण नहीं कर देता। यह देखा गया कि धारा 88 में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि संपत्ति की जब्ती की प्रक्रिया मात्र से प्रभावी होती है। पूर्ण पीठ ने कहा कि कुर्क की गई संपत्ति परिवार के अन्य सदस्यों के अधिकारों के अधीन है और भगोड़े के हिस्से का एहसास करने के लिए एक रिसीवर की नियुक्ति जरूरी नहीं कि संपत्ति को प्रबंध सदस्य के हाथों से बाहर कर दिया जाए। उस मामले में पूर्ण पीठ को भेजा गया प्रश्न जिसका उत्तर हां में दिया गया था वह था -

> "क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के तहत एक फरार व्यक्ति जो अविभाजित हिंदू परिवार का सदस्य है, पारिवारिक संपत्ति या उसके किसी भी हिस्से में अविभाजित हित को संलग्न किया जा सकता है?"

यद्यपि पूर्ण पीठ की राय के आधार पर मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में निहित टिप्पणियों में वादी-अपीलकर्ता के पक्ष में होने की कुछ समानता है, लेकिन वे वास्तव में उस सटीक प्रस्ताव से संबंधित नहीं हैं जिसके साथ हम सामना कर रहे हैं।

(9) अगला मामला जिसका संदर्भ श्री जैन द्वारा दिया गया था, वह पटना उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश का *बिदेश्वरी प्रसाद और अन्य बनाम पटना* उच्च न्यायालय का निर्णय है। *लाई मुंगार्न लाई और अन्य,* (4). उस मामले में निर्णय के लिए जो प्रश्न उठा था वह यह था कि क्या सरकार द्वारा कुर्क की गई संपत्ति को बेचे जाने से पहले दावा किए गए अपराधी द्वारा बेची गई कुर्क की गई संपत्ति में कोई ब्याज सरकार से खरीदार में निहित है या नहीं। यह माना गया कि धारा 88 के तहत बेची गई संपत्ति अभियुक्त की संपत्ति है और यदि उसने बिक्री से पहले उस संपत्ति में कोई ब्याज हस्तांतरित किया है, तो इस तरह के ब्याज को स्पष्ट रूप से सरकार द्वारा

बेचा नहीं जा सकता है क्योंकि संपत्ति को कुर्क करने से सरकार को धारा 88 के अलावा अपने पक्ष में कोई अधिकार नहीं मिलता है। सरकार द्वारा कुर्क की गई संपत्ति की बिक्री के बाद बंधक-डिक्री के लिए बंधक-डिक्री के लिए बंधककर्ता (जिसके पक्ष में अभियुक्त ने कुर्क की गई संपत्ति को गिरवी रखा था) द्वारा दायर मुकदमे में केवल नीलामी-क्रेता को (बन्धककर्ता के अलावा) एक आवश्यक-पक्ष (बन्धककर्ता के अलावा) माना गया था। सिवाय इसके कि मुकदमे को कानून के किसी भी प्रावधान द्वारा प्रतिबंधित नहीं माना गया था, बिंदेश्वरी *प्रसाद और अन्य (सुप्रा) के मामले में पटना उच्च न्यायालय का फैसला* किसी भी प्रत्यक्ष मदद का प्रतीत नहीं होता है।

(10) वकील ने इसके बाद बंबई उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के नारायण *कोंडाजी तमकर मामले में दिए गए फैसले का हवाला दिया। गोबिंद कृष्ण अभयारीकर;* (5) जिसमें यह व्यवस्था दी गई थी कि धारा 88 के खंड (7) में "सरकार के निपटान में" शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि जिस क्षण से भगोड़ा आदेश ति तारीख पर उपस्थित होने में विफल रहता है, संपत्ति में उसका सारा अधिकार, शीर्षक और ब्याज तुरंत सरकार को हस्तांतरित हो जाता है क्योंकि अधिकार केवल संपत्ति की वास्तविक कुर्की की तारीख से सरकार को जाता है। आगे यह माना गया कि लगाव कोई शीर्षक प्रदान नहीं करता है, लेकिन केवल अलगाव को रोकता है। श्री जैन ने अनुसूची 5 में निहित संहिता की धारा 88 के तहत कलेक्टर के रूप में उपायुक्त द्वारा भगोड़े की संपत्ति की कुर्की को अधिकृत करने वाले आदेश के रूप में भी हमारा ध्यान आकर्षित किया। निर्धारित प्रपत्र में उक्त आदेश के क्रियाशील शब्द इस प्रकार हैं:-

> "आपसे यह अधिकृत और अनुरोध किया जाता है कि इस अदालत के अगले आदेश तक उक्त भूमि को कुर्क और कुर्क किया जाए, और बिना देरी के प्रमाणित करें कि आपने इस आदेश के अनुसरण में क्या किया है।

हमारा ध्यान उपर्युक्त की ओर आकृष्ट किया गया ताकि यह दर्शाया जा सके कि संपत्ति का कोई भी मालिकाना हक केवल संपत्ति की कुर्की के परिणामस्वरूप सरकार के पास नहीं जाता है, और यह कि सरकार केवल संबंधित न्यायालय के अगले आदेशों तक इसे रखती है। हम वकील से सहमत हैं कि संबंधित न्यायालय द्वारा आगे कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और संपत्ति को न तो सरकार द्वारा जब्त किया गया था और न ही किसी बाहरी व्यक्ति को बेचा गया था, इसे सरकार द्वारा रिसीवर के समान स्थिति में रखा गया था।

(11) अगला मामला जिसका श्री जैन ने उल्लेख किया वह *शाह मुहम्मद और अन्य* बनाम *लाहौर उच्च न्यायालय का निर्णय है।सम्राट*, (6)। शाह मुहम्मद और अन्य के मामले में उस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह माना गया था कि एक भगोड़े की संपत्ति जिसके खिलाफ धारा 87 और 88 के तहत कार्यवाही की गई है, उसे भगोड़े की मृत्यु पर कुर्की से मुक्त किया जाना चाहिए क्योंकि धारा 88 के तहत जो कुछ भी कुर्क किया जा सकता है वह भगोड़े के हित में है। और उसकी मृत्यु पर वह ब्याज समाप्त हो जाता है और कुर्क की गई संपत्ति उसके उत्तराधिकारियों के पक्ष में जारी की जानी चाहिए। यद्यपि वर्तमान अपील पर निर्णय लेने के लिए हमारे लिए उस सीमा तक जाना आवश्यक नहीं है, लेकिन हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता का कोई भी प्रावधान उस संपत्ति की बहाली के लिए मृत भगोड़े के उत्तराधिकारी के दावे पर मुकदमा चलाने और निर्णय लेने वाले सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नहीं रोकता है, जिसमें शीर्षक मूल रूप से भगोड़े में निहित है। उत्तराधिकारी, और यदि संपत्ति अभी भी धारा 88 की उप-धारा (7) के तहत सरकार द्वारा रखी गई है, तो संपत्ति को जब्त करने आदि की प्रकृति

में कोई और आदेश नहीं दिया गया है, जब तक कि संपत्ति को सरकार द्वारा किसी तीसरे व्यक्ति को नहीं बेचा गया हो। धारा 89 के तहत भगोड़े के अधिकारों और भगोड़े के उत्तराधिकारी के अधिकारों में अंतर है। भगोड़ा धारा 89 के तहत दो साल के भीतर संपत्ति को बहाल कर सकता है यदि वह आपराधिक न्यायालय की संतुष्टि के लिए यह साबित करने में सक्षम है कि वह वारंट के निष्पादन से बचने के उद्देश्य से फरार नहीं हुआ या खुद को छिपाया नहीं और उसके पास उद्घोषणा की ऐसी सूचना नहीं थी जिससे वह उसमें निर्दिष्ट समय के भीतर उपस्थित हो सके। यदि वह धारा 89 के उपर्युक्त अवयवों को साबित करने में सक्षम नहीं है, तो वह दो साल के भीतर भी संपत्ति की बहाली का दावा नहीं कर सकता है। धारा 88(7) के तहत अभी भी सरकार के पास मौजूद संपत्ति को वापस पाने के मृत भगोड़े के उत्तराधिकारी के अधिकार पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

(12) बहुत पहले 1915 में इसे नियामत अली और अन्य बनाम पंजाब के मुख्य न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया था । *भारत के राज्य सचिव, और हाकम सिंह और अन्य*, (7) कि एक मृत भगोड़े के उत्तराधिकारी उसकी मृत्यु के बाद भगोड़े की संपत्ति में सफल होने के हकदार हैं, और यह कि संपत्ति पर सरकार का कब्जा, भले ही मालिक का दावा किया गया हो, भगोड़े की मृत्यु तक उत्तराधिकारी के प्रतिकूल नहीं हो जाता है। इससे पहले *साधु सिंह बनाम भारत में*भी। *भारत और अन्य के लिए राज्य सचिव*, (8) पंजाब के मुख्य न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा यह माना गया था कि जहां पंजाब प्रथागत कानून के अधीन किसी व्यक्ति की पैतृक अचल संपत्ति संहिता की धारा 88 के तहत संलग्न है और सरकार द्वारा बेची जाती है, बिक्री भगोड़े के जीवन हित को व्यक्त करती है और उसके पुरुष वंशजों के विरासत के अधिकार को समाप्त नहीं करती है। अवसान।

(13) किसी भगोड़े की संपत्ति को कुर्क करने का उद्देश्य उसे दंडित करना नहीं है, बल्कि उसकी उपस्थिति को मजबूर करना है। यदि संपत्ति को जब्त या निपटाया नहीं गया है, तो उसमें शीर्षक मालिक और उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों में निहित रहता है। इस मामले में संपत्ति को अपीलकर्ता के नाम पर उत्परिवर्तित किया गया था, और यहां तक कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी माना है कि अधिभोग के अलावा अन्य अधिकार, अर्थात् "मकान मालिक के अधिकार वादी में निहित हैं"। यह निष्कर्ष कि अधिनियम के लागू होने के बावजूद अधिभोग अधिकार जारी रहा, सही प्रतीत नहीं होता है। पंजाब में ऐसे सभी अधिभोग अधिकार जो भगोड़े के पास थे, धारा 3 के लागू होने पर स्वामित्व में बदल गए। धारा 3 में अधिभोग किरायेदार के शीर्षक की स्थिति में सुधार हुआ, न कि रिसीवर या किसी ऐसे व्यक्ति की जिसके निपटान में संपत्ति कुर्की के परिणामस्वरूप उस दिन खड़ी थी। शीर्षक कभी भी बंद नहीं होता है या अनुलग्नक द्वारा स्थानांतरित नहीं होता है, लेकिन मूल स्वामी में जारी रहता है।

(14) यह सच है कि भूमि के लिए दीवानी मुकदमा दो साल की कुर्की के बाद और धारा 89 में निर्धारित दो शर्तों को पूरा करने के बाद भगोड़े के खिलाफ दायर नहीं किया जा सकता है, लेकिन फरार व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी के अधिकार के साथ ऐसा कोई बंधन नहीं जुड़ा हुआ है। ऐसे वारिस को धारा 89 के तहत आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है। धारा 89 की निहित सीमा केवल ऐसे व्यक्ति के लिए है जो उस प्रावधान के तहत आवेदन कर सकता था। वर्तमान वादी ऐसा नहीं कर सकता था। अधिभोग किरायेदारी (जिसे कुर्क किया गया था) का अस्तित्व समाप्त हो गया था। संपत्ति में शीर्षक निश्चित रूप से वादी में निहित है। कानून का कोई भी प्रावधान सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को उसकी संपत्ति के कब्जे के लिए इस मुकदमे की सुनवाई करने से नहीं रोकता है।

(15) पूर्वगामी कारणों के लिए हम मानते हैं कि इस मुकदमे की सुनवाई के लिए सिविल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र संहिता की धारा 89 या कानून के किसी अन्य प्रावधान द्वारा निषिद्ध नहीं था। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में प्रावधान है कि सिविल कोर्ट के पास उन सभी कारणों की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है जो किसी अन्य कानून द्वारा स्पष्ट रूप से या निहित रूप से प्रतिबंधित नहीं हैं।

(16) ऊपर दिए गए कारणों के लिए, हम इस अपील को अनुमति देते हैं, विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को रद्द करते हैं और पलटते हैं और इसके स्थान पर प्रथम अपीलीय न्यायालय के फैसले को बहाल करते हैं जो वादी को विवाद में भूमि के कब्जे के लिए डिक्री प्रदान करता है। मामले में शामिल कानून के सवाल पर किसी भी प्रत्यक्ष अधिकार की पूर्ण अनुपस्थिति को देखते हुए हम पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ देते हैं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

वीरेंद्र कुमार
प्रीक्षिशु न्यायिक अधिकारी
चंडीगढ़